ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-3* June- 2021
Anthology : The Research

दिवाकर के उपन्यास : भाषिक लोकरंग

Diwakar's Novels: Bhashik Lokrang

Paper Submission: 15/06/2021, Date of Acceptance: 25/06/2021, Date of Publication: 27/06/2021

अजीत कुमार
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
तिलका माँझी भागलपुर
विश्वविद्यालय, भागलपुर,
बिहार, भारत

सारांश

'भाषा' मानव जीवन की महत्त्वपूर्ण इकाई है और उपन्यास मानव जीवन की बहुरंगी गाथा है। इसी मानव जीवन के विविध जीवन–शैलियों की अभिव्यक्ति के लिए उसके अनुरूप भाषाओं का भी विविधता के साथ प्रयोग आवश्यक होता है। यह उपन्यासकार के भाषिक कौशल पर निर्भर करता है कि विभिन्न संस्कृतियों की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति उसके लोक में सन्निहित विविध भाव–भंगिमाओं को बिना तोड़े–मरोड़े किस हद तक कुशलतापूर्वक अभिव्यंजित कर पाता है।

रामधारी सिंह दिवाकर निश्चय ही हिन्दी औपन्यासिक वाग्धारा के बेजोड़ शिल्पकार हैं। इनकी लेखनी किसी भी ग्राम्य संस्कृति की किसी भी भाव–भंगिमाओं के लिए बिल्कुल सटीक और समर्थ शब्द का चयन करती है। बड़े–से–बड़े विचार से लेकर सूक्ष्म–से–सूक्ष्म अनुभूति को इनके शब्द मूर्त्त रूप प्रदान कर देते हैं। रेणु के पश्चात् दिवाकर हिन्दी कथा–साहित्य में लोक व अंचल के रंग में रंगे सबसे बड़े और यशस्वी उपन्यासकार हैं।

Language is an important unit of human life and novel is a multicolored story of human life. For the expression of the various life-styles of this human life, it is necessary to use the corresponding languages with variety. It depends on the linguistic skills of the novelist that the extent to which the expression of the sensibility of different cultures is able to efficiently express the various expressions embodied in his folk without distorting.

Ramdhari Singh Diwakar is certainly the unmatched craftsman of Hindi novel Vagdhara. His writing selects absolutely accurate and capable words for any gesture of any rural culture. From the tiniest of thoughts to the most subtle of experiences, his words embody it. After Renu, Diwakar is the biggest and most successful novelist in Hindi fiction, colored in the colors of folk and region.

मुख्य शब्द : प्रस्तावना (भाषा), भाषा के विविध स्वरूप, हिन्दी उपन्यास और भाषा, दिवाकर के उपन्यासों का भाषिक लोकरंग, निष्कर्षात्मक विवेचन।

प्रस्तावना

मानव जीवन के विभिन्न आवश्यक घटकों में महत्त्वपूर्ण घटक 'भाषा' है। भाषा हमारे सामाजिक, मानवीय जीवन में इस तरह रची–बसी है कि इसके बिना जीवन की कल्पना ही कठिन है। भाषा ही एक ऐसा तत्त्व है जो हम मानव को अन्य प्राणियों से अलग करती है। आचार्य दण्डी का कथन कि ''वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्त्तते'' नितान्त सत्य प्रतीत होता है।

भाषा हमारी संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंगों में से एक है। किसी भी संस्कृति की पहचान सर्वप्रथम व सबसे अधिक गहराई से उसकी भाषा के माध्यम से ही की जा सकती है। सामान्यतः भाषा के माध्यम से हम केवल एक–दूसरे के विचार ही नहीं जानते वरन् उनकी सहायता से उनके संस्कार, व्यवहार, चाल–चलन, रहन–सहन, परम्पराओं को भी आसानी से जान लेते हैं। भाषा का यह स्वरूप हमारे सामने कई रूपों में प्रकट होता रहता है। यथा – मौखिक, लिखित व सांकेतिक। इन तीनों रूपों में मौखिक और सांकेतिक भाषा का प्रयोग कुछ हद तक मानवेतर प्राणी भी कर लेते हैं परन्तु इन दोनों के साथ लिखित भाषा का प्रयोग करने का सौभाग्य केवल मानव को ही है। इन लिखित–मौखिक भाषा के भी अन्यान्य रूप हमारे जीवन में प्रयुक्त होते हैं, जिनमें कुछ तो व्याकरण व भाषाशास्त्रीय सिद्धान्तों का पालन करते हुए लिखे व बोले जाते हैं और दूसरे इन व्याकरणों व सिद्धान्तों की चिन्ता किए बगैर बेधड़क बोले जाते

हैं। भाषा के इसी दूसरे स्वरूपों को भाषा वैज्ञानिकों ने बोली के अन्तर्गत रखा है। इसके साथ ही हमारे हिन्दी व अन्य भाषाओं में रचनात्मक कार्य व्याकरण सम्मत भाषा के द्वारा ही किया जाता है।

शोध का उद्देश्य

रामधारी सिंह दिवाकर के उपन्यासों के लोकरंगी व आंचलिक स्वरूपों के भाषागत संस्कार का अवलोकन।

भाषा के विविध स्वरूप

हिन्दी–साहित्य में अन्यान्य विधाओं के लिए अन्यान्य भाषा–स्वरूपों का अनुगमन किया जाता है। साहित्यिक रचनाओं में जिन–जिन भाषिक संरचना का दर्शन होता है, उसका वर्गीकृत रूप निम्नवत् हो सकता है।

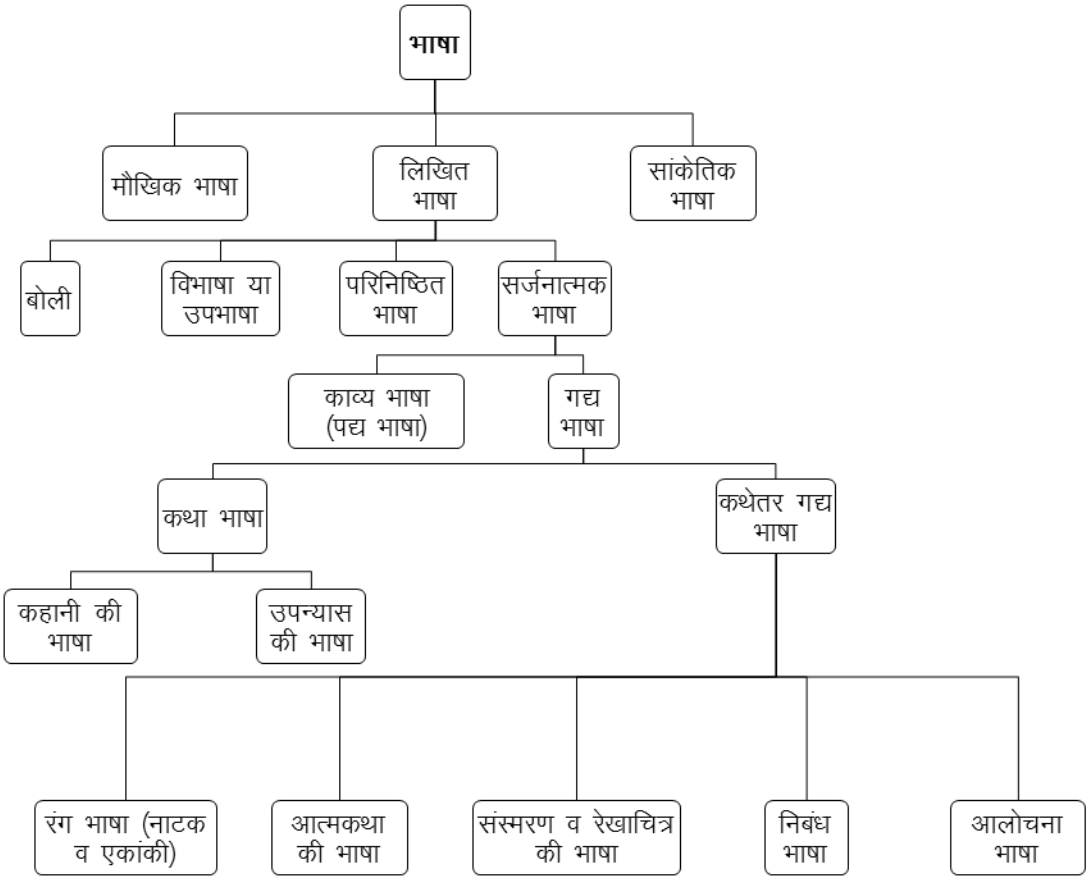

उपर्युक्त रेखा–चित्रीय विवरण से स्पष्ट है कि साहित्य के लिए सर्जनात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है।

हिन्दी उपन्यास और भाषा

हिन्दी के साहित्य–संसार में जिस विधा को 19वीं शताब्दी से अब तक सर्वाधिक व्यापकता से प्रस्तुत व निरंतर विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त है, वह है – गद्य। हिन्दी गद्य के विविध रूपों का सर्वांगीण विकास निरंतर होता रहा है। इस कारण उसकी भाषाओं के विकास का होना भी स्वाभाविक ही है। गद्य विधा में कथा–साहित्य के अन्तर्गत कहानी और उपन्यास की भाषा की उन्नति देखने लायक है। देवकी नन्दन खत्री व प्रेमचन्द से होते हुए रेणु तथा रेणु के पश्चात् भी कथा–भाषा को अन्यायन्य कथाकारों द्वारा एक नया आयाम प्रदान किया जाता रहा है। इन्हीं कथाकारों में एक नाम है – रामधारी सिंह दिवाकर।

दिवाकर की कहानियों व उपन्यासों ने प्रेमचन्द की संवेदना के धरातल पर रेणु की कहन–शैली से प्रेरित होकर अपने समकालीन समाज की जिन–जिन स्थितियों का चित्रण किया है, वह सराहनीय है।

सर्जनात्मक भाषा मूलतः साहित्यिक, परिनिष्ठित व व्याकरण सम्मत भाषा होती है। परन्तु सर्जनात्मकता एक ऐसी चीज है जो निरंतर ही अपने नवीन प्रयोगों के अन्वेषण से युक्त रहती है। इस कारण हिन्दी उपन्यास भाषा के मामले में कई नये सर्जनात्मक प्रयोग का वहन करते हुए चलती है। इन उपन्यासों में भाषा के स्तर पर प्रारंभ से ही नित–नवीन प्रयोग होते रहे हैं। कहीं हिन्दी की संस्कृतनिष्ठ शब्दावलियों की बहुलता रही है, कहीं फारसी, अरबी, उर्दू के शब्दों की। यह प्रयोग पूर्व प्रेमचन्द युगीन, प्रेमचन्द युगीन, व प्रेमचन्दोत्तर युगीन औपन्यासिक रचनाओं में प्रचुरता से देखा जा सकता है। भाषा का यह रूप शब्द के स्तर पर जितना सजीला लेकिन विविधतापूर्ण था, उतना ही भाव व अर्थवत्ता के स्तर पर भी। चूँकि उपन्यास का क्षेत्र व्यापक होता है, इस कारण उसमें वर्णित भाषा, भाव, संस्कृति व लोक–चेतना का उतना ही विविधतापूर्ण स्वरूप उपस्थित होता है। उपन्यासों में

एकाधिक सामाजिक जीवन–शैली रूपायित होती है, फलतः इसके भाव के चरित्रांकन में उपन्यासकार को अन्यान्य भाषिक संस्कृतियों का अनुगमन करना पड़ता है। उपन्यासकार अपने उद्दिष्ट विषय से सम्बन्धित मुख्य कथनों को सामान्यतः साहित्यिक भाषा या परिनिष्ठित भाषा में ही कहते हैं। लेकिन यह कोई बंधा हुआ नियम नहीं है। बीज कथन तो कभी–कभी कथाकार बोलियों में भी अर्थात् बोल–चाल की ग्रामीण शैली में भी कह जाते हैं।

हिन्दी उपन्यासों में लोक तत्त्व के विविध रूप उपलब्ध हैं। इन विविध रूपों में भाषिक लोकरंग का अपना अलग ही महत्व है। हिन्दी उपन्यास के शिखर–पुरुष प्रेमचन्द में यह लोकरंग उनके 'गोदान' में बड़ा मोहक है। लोक तत्त्व का भाषिक स्वरूप मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं वार्तालाप की ग्राम्य शैली में खूब दिखाई पड़ता है। इन भाषिक चेतना का प्रेमचन्द के बाद यदि कहीं सर्वाधिक दिखाई पड़ता है तो वह है– रेणु के उपन्यास। रेणु के यहाँ लोक तत्त्व के जितने रंग हिलोरें मारती दिखाई पड़ती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इसमें वार्तालाप के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दों का लालित्य देखते बनता है। रेणु की कहनी 'तीसरी कसम' की प्रसिद्धि का कारण भी कहानी का लोकरंग ही था। कहानी का पात्र धुन्नीराम हीरामन से कहता है– ''इस्स! तुम भी खूब हो हीरामन। उस साल कम्पनी का बाघ, इस बार कम्पनी की जनानी।'' लोकरंग में रचा–बसा अर्थहीन शब्द भी अपने ध्वन्यात्मकता व सांगीतिक गुणों के कारण एक नवीन भाव पाठक के सामने खड़ा कर देते हैं। जैसे उपर्युक्त वार्तालाप में प्रयुक्त शब्द 'इस्स' भावयुक्त, अप्रचलित, सहज प्रकट और अंतर्मन से उत्पन्न विशिष्ट शब्द है जो एक साथ ही लज्जा, आश्चर्य एवं प्रसन्नतों के भावों को प्रकट कर देते हैं। प्रेमचन्द और रेणु की जीवंत परम्परा का सर्वाधिक प्रभाव यदि किसी उपन्यासकार की रचनाओं में दिखाई पड़ता है तो वह है रामधारी सिंह दिवाकर।

दिवाकर के उपन्यासों का भाषिक लोकरंग

दिवाकर के प्रमुख उपन्यास हैं – 'क्या घर क्या परदेश', 'काली सुबह का सूरज', 'पंचमी तत्पुरुष', 'आग–पानी–आकाश', 'टूटटे दायरे', 'अकाल संध्या' और 'दाखिल–खारिज'।

सामान्यतः किसी भी उपन्यास के भाषिक लोकरंग की छानबीन इस आधार पर अधिक समीचीन मालूम होती है कि उस रचना में शब्द, वाक्य के माध्यम से किस हद तक तद्भव व देशज शब्दों से युक्त वाक्यावलियों का प्रयोग हुआ है तथा किस हद तक ग्राम्य वातावरण के सहन–सहन व संस्कृतियों में प्रयुक्त लोकधुनों, लोकगीतों व लोकरंजन के अन्य क्रियाकलापों का चित्रण हो पाया है। भाषिक लोकरंग के इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए दिवाकर के उपन्यासों का विश्लेषण निम्नवत् है।

क्या घर क्या परदेस

दिवाकर की ग्रामीण संस्कृति में रचे–बसे साहित्यकार हैं। इस कारण 'क्या घर क्या परदेस' उपन्यास में भी उन्होंने एक शिक्षित, ईमानदार एवं गरीब परिवार की व्यथा कथा कही है।

इस उपन्यास में शाब्दिक रूप से लोक जीवन का पर्याप्त स्वरूप दिखाई पड़ता है। क्योंकि तद्भव व देशज शब्दों की भरमार है। यथा – तद्भव : गरमी, गाँव, धुआँ, आँगन, अंधेरा, आन्हर, उमर, भरम इत्यादि। देशज : गोहाल, दालान, धोती, ढिबरी, मूढ़े ओसरे, बकलेल, खेती–बाड़ी, बिछावन, घिसा–पिटा, ऊब, भीत, बलुआही, झंखाड़, सुनसान, लतरें, बाड़ी, झाड़ी इत्यादि।

उपर्युक्त तद्भव व देशज शब्दों की तरह लोक जीवन से जुड़े हुए अनेक शब्द इस उपन्यास में प्रयुक्त हैं। इसके साथ ही उपन्यास का पात्र बौना रामदास जो ग्राम्य जीवन का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। असहाय विधवा के पक्ष में गाँव के दबंग संतसेवी जी के विरूद्ध कोर्ट में गवाही देने के एक दिन पहले गाँव की गलियों में घूम–घूमकर गालियाँ देता हुआ रामदास का वार्तालाप लोक–जीवन का अप्रतिम उदाहरण है – ''हिजड़े... दब्बू... डरपोक! ...हैजे में सब–के–सब मर क्यों नहीं गए? फेंक आता सबको नदी में...!!''[1]

असहाय की निःस्वार्थपूर्वक सहायता करना एवं अन्याय व अनाचार के खिलाफ खुलकर बोलने की क्षमता ग्राम्य परिवेश में ही अधिक दिखाई पड़ती है। रामदास के सभी वार्तालाप में देशज व तद्भव शब्दों की बहुलता के साथ भाषा प्रयोग में लोच भी है जो वार्तालाप में सौन्दर्य बोध का आभास कराता है। उपन्यास के नायक कौशल और बौना रामदास का वार्तालाप द्रष्टव्य है – (बौना रामदास कौशल को कहता है) ''आओ, बैठो, बउआ, बैठो! अरे तुमलोग ही तो आन्हर गाँव की आँख हो। कुछ करो। नहीं तो ई डाकू लोग सबको कच्चा चबा जायेंगे! डरना मट बेटा! कुछ न करेंगे ससुरा! जो बेईमान होता है न, उसमें हिम्मत नहीं होती। चोर अंजोर न सहे...।''[2]

इस प्रकार उपन्यासकार ने जिस बातचीत का वातावरण निर्मित किया है उसमें इन वाक्यावलियों का होना बड़ा आवश्रूक है। नहीं तो यथोचित भाव उपस्थित नहीं हो पाता। उपर्युक्त वाक्यावलियों में प्रयुक्त शब्द 'बउआ' शब्द मैथिल क्षेत्र का आभास कराती है तथा अन्य जगहों पर ग्राम्य प्रतीकों व बिम्बों का सहारा लेते हुए लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग भाषिक लोकरंग का परिचय देती है। यथा – ''जो बेईमान होता है न, उसमें हिम्मत नहीं होती।'' तथा ''चोर अंजोर न सहे...।'' यहाँ पर 'चोर अंजोर न सहे' निश्चय ही ग्रामीण क्षेत्रों के बोलचाल को प्रकट करती है।

विवेच्य उपन्यास में लोकगीतों एवं गाँव में प्रचलित मानस के छंदों का भी यथोचित प्रयोग है जो ग्रामीण संस्कृति के गीतात्मक भावों का दर्शन कराता है। कौशल के पिता मरणासन्न अवस्था में अपने पुत्र को अपने जीवन की आकांक्षा से युक्त एक गीत के माध्यम से सुनाता है जो ग्राम्य संस्कृति में बड़ी गहरी पैठी हुई है :–

''का सुनाइ विधि काह सुनावा।
का देखाई चह काह देखावा।
एहि कुरोग कर औसुध नाही।''

कौशल के पिता रामविलास जी रामायणी थे। गाँव में किसी भी बात को कहने के लिए मानस के दोहे–चौपाई को उद्धृत करने की पुरानी शैली है जो बड़ी ही मधुरता के साथ वार्तालाप को सरस बनाती है। इसी प्रकार कौशल के ढाढ़स देते हुए पिता को समझाने की स्थिति में भी उनके पिता उसी मानस की पंक्ति को अपने मनोभाव व्यक्त कर देते हैं :–

''कलप बेलिय जिमि बहु विधि लाली।
सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।
फलत फलत भयउ बिधि बामा।
जानि न जाहि काहि परिनामा।।[4]

लोकरंग की यही भाषिक चेतना ग्राम्य वातावरण को मधुमय बनाये रहती है, जो इस उपन्यास में भी है।

काली सुबह का सूरज

ग्राम्य कथा का धरातल बड़ा ही विस्तृत होता है। बिल्कुल पंत जी के 'मरकत डिब्बे का खुला ग्राम'' की तरह। अनेकानेक भावों, संवेदनाओं, हर्ष व विषादों की अठखेलियाँ यहाँ निरंतर ही होती रहती है। इन्हीं कथाओं में से एक दिवाकर के उपन्यास 'काली सुबह का सूरज' की कथा है, जिसके केन्द्रीय पात्र नरेन्द्र के माध्यम से लेखक ने गाँव के एक ऐसे चरित्र को दिखाया है जो गरीबी में पलकर येन–केन–प्रकारेन आगे बढ़कर प्राध्यापक बन पाया है। परन्तु नौकरी होने के पश्चात् गरीब माता–पिता के प्रति उसके स्वभाव बदल जाते हैं। परिवार के जाने बिना ही किसी लड़की से शादी कर चैन से शहरों में रहता है।

विवेच्य उपन्यास लोकरंग की संवेदनाओं–व्यथाओं से भरा हुआ है। कथ्य के लोकरंगी भाव के कारण भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द तद्भव, देशज व अन्य उन शब्दों से भरे हुए हैं, जो हमारी ग्राम्य संस्कृति में गहरी पैठी हुई है। यथा – घुटी–पुटी, धम, हाँफना, ढिबरी, आँगन, भीत, रस्सी, अगोरकर, उजास, मुड़ेर, फूस, धूल, धुएँ, गोहाल, टीले, गोबर, मुँह, दूध, कपड़ा, बछिया, पेट, खरास, डकैती, पतोहू, रद्दी, रहन–सहन, चटाई, रूआँस, लूटमार, डाकू, अंगिया, अछरकट्टू, पंखुड़ी, ठिकाना, छुट्टी, बौना, झंखाड़, ईंट, बोरिया, तगड़ा, भउजी, बुआ, माँग इत्यादि।

विवेच्य उपन्यास में लोकतत्व कई रूपों में विद्यमान है जो लोकतत्व की भाषिक चेतना का आभास कराती प्रतीत होती है। नरेन्द्र की फुफेरी बहन बिन्दी के विवाह का पूरा भार नरेन्द्र के ऊपर था, परन्तु नरेन्द्र अब उसकी शादी का सौदा करने लगा था। ऐसे में नरेन्द्र के पिता के मित्र सिरनाथ द्वारा बिन्दी की शादी के लिए एक अच्छा वर और घर ढूँढ़ना तथा नरेन्द्र की असहमति के बावजूद असहाय बुआ और बिन्दी के जीवन को बेहतर रूप देने के प्रति सहास और प्रयास करना – यह ग्राम्य संस्कृति की परोपकारी वृत्ति का आभास कराती है, जो शहरी या उच्च वर्ग में कम देखा जाता है।

दिवाकर जी के उपन्यासों में ग्राम्य वातावरण में प्रचलित मुहावरों– लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है, जो उपन्यास की भाषिक संरचना को एक ठोस धरातल प्रदान करते हैं। यथा – जब बिंदी की माँ (बुआ) अपने गहने बेचने के तर्क के लिए एक लोकोक्ति का सहारा लेती हुई कहती है कि – ''सुख का सिंगार दुख का सहारा''।[3]

प्रत्येक परिवेश के क्षेत्रीय देवी–देवता होते हैं, जो जनमानस में एक आस्था का निर्माण करते हैं। किसी दुःख–सुख की घड़ी में लोग उसी का स्मरण करते हैं। इस उपन्यास में कौसला माता उसी देवी के रूप में वर्णित है।

उपन्यास में प्रतीक और बिम्ब का भी पर्याप्त प्रयोग है जो वाक्य की अथवत्ता को एक नया आभास प्रदान करती है। यथा – 'महकार का फल!...' बेहद खूबसूरत और भीतर से एकदमा सड़ा हुआ, दुर्गंधयुक्त। अतीव सुंदर दिखने वाले आदमी के कुत्सित हृदय की तरह।''[4]

उपन्यास ''काली सुबह का सूरज'' लोक–भाषा के सभी गुणों से सम्पृक्त उपन्यास है। यथास्थान अलंकारों, शब्दचित्रों, प्रतीकों, बिम्बों का प्रयोग ग्रामीण शैली की लोकोक्तियों, मुहावरों एवं शब्द समूहों के माध्यम से होता रहा है।

पंचमी तत्पुरुष

'पंचमी तत्पुरुष' दिवाकर का नारी–चरित्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें ग्रामीण महिलाओं के साथ होने वाले अनाचार व अनीति के विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्मता के साथ अंकन हो पाया है। ''अभिजातवर्गी'' महिलाओं पर शारीरिक व मानसिक रूप से होने वाले परोक्ष आघात, 'मजदूरवर्गी महिलाओं का स्वच्छंद स्वभाव – पति से प्रत्यक्षतः लड़ना, गाली देना, रूठना' इत्यादि। शादी के पश्चात् पत्नी को गाँव में छोड़कर पति का अन्य महिलाओं के साथ शहरों में शादी कर लेना, किशोरवय के ग्रामीण परिवेश में पल्लवित प्रेम का बहिष्कार कर लड़कियों का किसी अन्य अज्ञात से शादी कर देना, इस तरह के अनेक विषय–वस्तु जो महिलाओं से सम्बन्धित हैं – का दिवाकर ने इस उपन्यास में सजीव चित्रण किया है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र अहिल्या (लाल बहू) है।

संवेदना जब ग्राम्य परिवेश में स्पंदित हो रही हो तो उस अमूर्त्त भाव को मूर्त्त रूप प्रदान करने के लिए उसी परिवेश के शब्द सटीक अर्थ प्रेषित कर सकते हैं। इस कारण पंचमी तत्पुरुष में कथाकार ने पर्याप्त शब्द ऐसे रखे हैं, जो लोकभाव से पूर्ण हैं। यथा – दुलार, ढंग, चुटकी, कोना, पधिया, पहर, एकदम, खंडहर, खपरैल, हड़बड़ाना, थकान, उलाहना, डाँट, बेडौल, खुरचना, ओट, झाँकना, खद्दर, टीसना, कछार, टप्पर, सचमुच, बचकानी, पगडंडी, गुमसुम, डाल, छतनार, ढेर, बासी, गौना, ठइरी, बरस, कच्चा, चिट्ठी, खोंख, खंखारकर, दमघोंटू, कुँवारी, चीख, लाठी, किवाड़, भुनभुनाना, सुनरी, लंगड़ा, हुज्जत, हाड़–काठ, पिद्दी, ओढ़नी, बलुआही, टप–टप, टीस, टप्पर, कछार, अधडूबी, मटमैला, दाह, हलका, डैना, डुबकी, अधंगा, लदी–फदी, टोला, साँवला, कलूटा, अकचकाना, मैली–कुचैली, ढिंढोरा, कहरना, डबडबाना, कचोट, ढर्रा, झाड़न–बुहारन, बथान, गोद, ऊब–डूब, सुदभरना, रोपनी, कोर–कोर, जोहना, डावाडोल, बरतुहार, झोंटा–झोंटोअल,

बमपिलाठ, मून, कनखी, बड़का, टोटका, रद्दी, धौंस इत्यादि।

विवेच्य उपन्यास की भाषिक लोक–चेतना उसके वाक्यांशों में निहित प्रतीकों, बिम्बों, अलंकारों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों से अभित्यक्त होकर लोकभाव को बिल्कुल उद्दीप्त कर देती है। यथा :–

सूनी–उजली माँग–सी[5] (सड़कों के सूनेपन के लिए प्रयुक्त)

...निस्तेज पीली–पीली–सी धूप[6] (अलंकार)

उदास दोपहर[7] (अलंकार)

तूफान मचाये रहना[8] (मुहावरा)

कर्ज का ब्याज और लड़की की बाढ़ बेहिसाब बढ़ती है। (लोकोक्ति)

इस तरह के तमाम शब्द–समूह विवेच्य उपन्यास में प्रयुक्त है जो उपन्यास के लोकरंगी चरित्र का चित्रांकन करने में सफल है।

आग पानी आकाश

दलित विमर्श को नया आयाम देने वाला उपन्यास 'आग पानी आकाश' ग्रामीण जीवन के एक ऐसे पहलू का सूक्ष्म व सटीक अन्वेषण तथा विश्लेषण करता है जो अब तक हिन्दी–साहित्य में बिल्कुल ही अनछुए पहलू की तरह है।

सामान्यतः दलित–साहित्य में उच्चवर्गी लोगों द्वारा निम्नवर्गी दलितों पर किये गये या किये जा रहे अत्याचारों का चित्रांकन होता आया है, जो मूलतः जातिगत आन्दोलन की तरह भी है। परन्तु हमारे ग्राम्य वातावरण में आज निम्न जाति के लोग जो अब आर्थिक रूप से सबल हैं वही अपनी जाति के निम्नवर्गी गरीबों का चारों तरफ से शोषण कर रहे हैं। यह समस्या घुन की तरह सामाजिक शांति की जड़ो को खाये जा रही है। साथ ही इस नयी समस्या पर हमारे तथाकथित दलित साहित्यकारों का ध्यान भी अब तक नहीं जा सका है या वे अब तक नजरअंदाज कर रहे हैं। दिवाकर जी की लेखनी ही ऐसे समय में समाज के इस कोढ़ को हमारे सामने रखने का प्रयास करती है, जिसका सबसे सफल उदाहरण है – 'आग पानी आकाश'। इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं – भागवत वैश्यंत्री और युगेश्वर वैश्यंत्री।

विवेच्य उपन्यास की कथावस्तु मूलतः ठेठ ग्रामीण परिवेश की है। इस कारण इस कथा–प्रवाह के चरित्रांकन में प्रयुक्त शब्द भी ठेठ बोली से अनुप्राणित है, जो इस उपन्यास के लोक व अंचल से गहरे सम्बन्ध को जोड़ने का प्रयास करती है। लोक व अंचल में प्रचलित उन शब्दावलियों की शृंखला तो बड़ी लम्बी है, परन्तु कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं :– तुनकमिजाज, सिकुड़ी, डहरिया, खानगी, दुपहरिया, चटिया, बिद्दा, डगरा–सूप, धरकार देहरी, ढकिया, डकैती, खोराकी, ठर्रा, खट्टी, कड़–कड़–कड़ाक, भट्ठा, हाट–बाजार इत्यादि।

इन शब्दों से निश्चित ही लोक व आंचलिकता की सुगंध मिल रही है। इसके अलावा लोकगीत और लोकोक्ति भी ग्रामीण भाषिक स्वरूपों को कुछ कम चैतन्य नहीं करती, वरन् अधिक ही। ऐसी वाक्यावली द्रष्टव्य है:–

'वसुधा काहू की न भई'[10] (लोकोक्ति)

'मुसहर जन परेवा धन'[11] (लोकोक्ति)

'चारो बरन छत्तीसों जात'[12] (लोकोक्ति)

'बाप का नाम लत्तीफत्ती, बेटे का नाम दुर्गादास'[13] (लोकाक्ति)

'कटोरे पे कटोरा बेटा बाप से भी गोरा – नारियल'[15] (पहेली)

इसी प्रकार कुछ काव्यमय पंक्तियाँ, गीत एवं कहावत जो गाँव की भाविक मधुरता की पहचान कराती है। द्रष्टव्य है –

'ठीक–ठीक दुपहरिया, नाचे चौधरिया,
गुरुजी के आसन डोले, भूख मरे चटिया।
गुरुजी आए, छुट्टी पाए,
हाथी छोड़, घोड़ा दौड़ाए।
घोड़ा पड़ गया रेत में, सारी विद्या कंठ में।[16]
'ओ–ना–मा–सि–धं
गुरुजी चितंग।'[17]

लोकगीत

1. 'दही लो दही...
   दही मिट्ठी कि खट्टी?
   मिट्ठी! अंगुरी डुबाय के देख लो रज्जा!'
2. जान दे दूँगी मैं तो तेरे वास्ते
   तुमको होगी खबर एक मुद्दत के बाद...
   कड़–कड़ कड़ाक! ... कड़–कड़ कड़ाक!
3. मइया हरिहर सुगना रे!...
   कौन बन बोले मइया कारी कोइलिया रे...
   मइया रे कौन बन बोल–अ हयि मयूर
   जगदम्बा मइया राज करथिन हे!...
4. अइसन पढ़ना पढ़ल–अ बेटा अपने जान गंवानी
   आब–आब करि के मरल–अ बेटा, खटिये तर में पानी।
5. कि आ हे मैया बिसुहरि हे!
   कंगला के दे हो मैया अन–धन सोनमा
   निपुती के दे हो मैया पूत।...
6. पहुनजन घूरि न जाइयो यो।
   हमरा घरवा में नारी झगड़हिया
   पहुनजन घूरि न जाइयो यो।
   अबकी बेरियां हम धान सुखेबै
   परुकां न करबै कलौआ
   पहुनजन घूरि न जाइयो यो!
7. गवना करा के पिया गइले कलकतवा
   लिखियो न भेजे एगो पाती!
8. ये डागडर बाबू, बताईं दवाई।

निश्चय ही विवेच्य उपन्यास में प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्ति, कहावतें एवं लोकगीतों के ग्राम्य संवेदनाओं ने कथा–वस्तु को एक नई ऊर्जा प्रदान की है।

टूटते दायरे

यह उपन्यास भी दलित समाज की उसी नियति की गाथा कह रही है, जो परम्परा से चली आ रही है; परन्तु दलित समाज के सामन्ती वर्ग के लोगों द्वारा किये जा रहे शोषण का एक मात्र नसीबलाल के पिता द्वारा उसका विरोध किया गया। साथ ही अत्याचार करने वालों को यह अहसास दिलाया गया कि अब अत्याचार का प्रतिरोध भी मजबूती से किया जा सकता है। विरोध के इस दृश्य ने पूरे दलित समाज में एक नई ऊर्जा का संचार किया।

विवेच्य उपन्यास आजादी के बाद के भारतीय समाज का सांस्कृतिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है, जो लोगों में जागृति के एक नए दौर का दृश्य उपस्थित करता है।

निश्चय ही ग्रामीण परिवेश की एक सशक्त कथा–वस्तु होने से इसके बनाव में लोक–संस्कृति के शब्द प्रयुक्त हैं। द्रष्टव्य है – 'अड्डा, लफंगा, पतुरिया, टोल, ठूँठ, कत्थई, मुड़कट्टी, डोकानिया, तख्ती, बहुरुपिया, तौलिया, बनियान, खादी, जाजिम, गप्प, टोटका, डागदर, गट्ठर, गद्दी, पत्ते, लत्तियाँ, गिरहकट्ट, अंचरा, सूते हुए हैं, बिहान, खाट, गूँ–गाँ, पथरलेख, छिटपुट, मटमैला, छीना–झपटी, बटाईदार, सोलकन्ह इत्यादि।

इन शब्दों की ही भांति कुछ वाक्य–समूह जो लोकरंग में रंगे हुए हैं, द्रष्टव्य है –

1. 'लोहा में जंग लागल कोइया में काई
खादी की धोती में छौआ लपटाइल
गान्हीं के चेलन में लागल बा बाजी
के केतना पइसा कमाला से राजी
आजादी के निकलल दिवाला हो भाई
आजादी के निकलल दिवाला!'[18]

इस लोकगीत में भोजपुरी की सुगंध है जो आजादी के बाद के समाज की स्थिति का चित्रण कर रहे हैं, जो निरंतर गिरते मानव–मूल्यों की स्थिति का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन है।

अकाल संध्या

'अकाल संध्या' दिवाकर का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जो बिहार के एक ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं के माध्यम से पूरे भारतीय समाज की दयनीयता को प्रकट कर रही है।

'अकाल संध्या' का केन्द्रीय पात्र है – 'माई' जो अपने गाँव और समाज का पूरा व्यक्तित्व समेटे हुए है। माई का बेटा नन्दू पढ़–लिखकर अमेरिका चला जाता है और कुछ दिनों बाद वह अपने पूरे परिवार को भी ले जाता है। अकेली रह जाती है तो सिर्फ माई। वह है आज के पढ़े–लिखे भारतीय समाज का चित्र! प्रतिभाएँ पलायन कर रही हैं और भारतीय राजनीति कम पढ़े–लिखे लोगों के हाथ में सौंपी जा रही है।

राजनीति का नया स्वरूप समाज को भी बदलता है। जो पुरानी सामंती व्यवस्था को पूर्णरूपेण त्रस्त–ध्वस्त कर देती है। परन्तु इसके साथ ही एक नई सामंती प्रवृत्तियाँ पनपने लगती है। पहले उच्च जाति के लोग सामंत थे, जो समाज का शोषण करते थे। अब निचली जाति के वे लोग जो कम पढ़–लिखकर ही राजनीति में अच्छे ओहदे पर पहुँच रहे हैं। उनके द्वारा पुनः समाज के दुर्बल एवं लाचार लोगों का शोषण किया जा रहा है।

ग्राम्य परिवेश के इन कथ्य के साथ उपन्यास का शाब्दिक बनाव–बुनाव भी ग्राम्य भाव से पूर्णतः प्रेरित है। यह इस उपन्यास के सौन्दर्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। कुछ ग्राम्य प्रचलित शब्द द्रष्टव्य हैं :–

'लाल पटोरी, सिन्हुरिया, महुआ, घटवारिन, आँचर, साक्षसिनी, कबिराहा मठ, चोर–चिहाररर–बटमार, टिनहा, खपरैल, पराती, दुपहरिया, अछैत, रोपनी–डोभनी, कमौनी, निछच्छ, सराप, कालिख, खपरी, झाड़ू, काला–कलूटा, लुँगी, भद्दी–भद्दी, खटमिट्ठा, गुरुअई' इत्यादि।

इस प्रकार ग्राम्य रंग में रचे–बसे शब्द ग्रामीण संस्कृति से परिचय कराते हैं। इसी संस्कृति को और अधिक गहराई तक जानने के लिए गाँव में बोली जाने वाली लोकोक्तियाँ एवं गीत द्रष्टव्य है :–

''चानु मामा चान मामा
हँसुआ दा।
सेहो हँसुआ काहे ला?
घसिया गढ़ावे ला।
से हो घसिया काहे ला?
गइया के खाये ला।
से हो गइया काहे ला?
दुधवा दुहावे ला।
से हो दुधवा काहे ला?
भउजी के खाये ला।''[19]

भोजपुरी मिट्टी की सोंधी खुशबू बिखेरती यह गीत बच्चे के द्वारा गाँव में गाते देखा जा सकता है।

''जागो–जागो हो किसान
जागो–जागो हो मजदूर
जरा हँस के बालो जी,
जा रही कार्नवालिस की सेना (जमींदारी)
हँस के बोलो जी।...''[20]

गाँव की नाट्य–मंडली भी समकालीनता पर बड़ा ही तगड़ा व्यंग्य छोड़ता है। यह गीत भी पुराने जमींदारों की जमींदारी जाने की दशा पर व्यंग्य करता प्रतीत होता है।

'कारी कुतवा भुंकेबो कचहरिया में।
बहुत सतौले बाबू बहुत रोबवाले
बहुत खटौले तू बेगरिया में।
कारी कुतवा भुकैबो कचहरिया में...![21]
जमींदारी के तिरोहित होने की द

शा में फब्तियों के रूप में यह गीत जमींदारों को सुनाया जा रहा है।

निष्कर्ष

रामधारी सिंह दिवाकर हिन्दी औपन्यासिक धारा के अप्रतिम उपन्यासकार हैं। भाषा और भाव का अद्‌भुत संतुलन इनके उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। इनके पास गँवई माटी–पानी, बोली–बानी, चाल–चलन एवं रहन–सहन का बड़ा ही सूक्ष्म अवलोकन है। गाँव के प्रत्येक भाव–भंगिमाओं का बारीक अन्वेषण करते हुए उसके मानवीय धरातल के व्यापकत्व में शामिल लघु व अतिलघु विचारों, संवेदनाओं, सभ्यता, संस्कृति, दुःख–सुख, हर्ष–विषाद, यातना–प्रवंचना एवं आगमन–पलायन पर इनकी लेखनी जितनी तीक्ष्ण है उतना ही गंभीर भी।

दिवाकर द्वारा रचित सभी उपन्यास की भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है – उसका लोक व अंचल के संस्कार से पूर्णरूपेण संस्कारित होना। लोक–संस्कृति की अच्छी–से–अच्छी बातों–विचारों से लेकर खराब–से–खराब गालियाँ भी इनके साहित्य का मान बढ़ाती है। शायद यही हिन्दी उपन्यास की भाषिक चेतना का वैशिष्ट्य और लोकरंग है। तभी इनका उपन्यास बड़े–बड़े विचारों एवं

सूक्ष्म–से–सूक्ष्म भावों को कम–से–कम सहज और सरल शब्दों में पाठक तक पहुँचाने में समर्थ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *क्या घर क्या परदेश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–52*
2. *क्या घर क्या परदेश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–53*
3. *काली सुबह का सूरज (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–85*
4. *क्या घर क्या परदेश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–79*
5. *पंचमी तत्पुरुष (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–15*
6. *पंचमी तत्पुरुष (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–06*
7. *पंचमी तत्पुरुष (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–06*
8. *पंचमी तत्पुरुष (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–13*
9. *पंचमी तत्पुरुष (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–16*
10. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–21*
11. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–19*
12. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–05*
13. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–07*
14. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–07*
15. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–07*
16. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–08*
17. *आग पानी आकाश (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–09*
18. *टूटते दायरे (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–14*
19. *अकाल संध्या (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–22*
20. *अकाल संध्या (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–39*
21. *अकाल संध्या (उपन्यास), लेखक–रामधारी सिंह दिवाकर, पृष्ठ–40*